

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES



ISSN 2277 – 9809 (online)

ISSN 2348 - 9359 (Print)

An Internationally Indexed Peer Reviewed & Refereed Journal

www.IRJMSH.com
www.isarasolutions.com

Published by iSaRa Solutions

बुन्देलखण्ड के आदिवासी कोलों का आर्थिक परिदृश्य*

डा० शक्ति गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय, मौदहा (हमीरपुर)

सरलता, सादगी, स्वाभिमान, समर्पण, एकान्त, प्रियता, प्रकृति प्रेम आदि गुणों से ओत प्रोत तथा अपनी विशिष्ट छवि, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विशिष्टताओं के लिये प्रसिद्ध आदिवासी कोल समुदाय प्रकृति की अनोखी एवं अनुपम कृति है।

समाज के सदस्य के रूप में मानव का इतिहास छोटे-छोटे कबीलों से प्रारम्भ होता है। इन लघु समाजों को प्रकृति के विभिन्न तत्वों एवं वन में विचरण करने वाले अन्य प्राणियों से मात्र अस्तित्व के लिए कठिन संघर्ष के एक अत्यन्त लम्बे दौर से गुजरना पड़ा। महाद्वीपों के दुर्गम क्षेत्रों में आज भी ऐसे अनेक मानव समूह हैं, जो हजारों वर्षों से विश्व की आधुनिक सभ्यता से दूर अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की पहचान बनाए हुए हैं।

जनजातीय मानव समूह बीहड़ वनों, मरुस्थलों, ऊँचे पर्वतों और अनुवर पठारों के उन अंचलों में निवास करते हैं, जो आधुनिक समाज के लोगों के अर्थ में अनुपयोगी हैं। इस मानव-समूहों का अपना अलिखित इतिहास रहा है, जिसका केवल अन्तिम पृष्ठ ही शेष बचा है, और उसमें यह लिखा है कि न जाने किस समय यह समूह छोटे-छोटे ऐसे कबीलों में बंट गया, जिनमें एक दूसरे की पहचान और रिश्तों की डोरी टूट चुकी है या उलझ चुकी है। हिन्दी में ऐसे मानव समूहों के लिए 'आदिवासी', 'आदिमवासी', 'कबीली आबादी' और जनजाति जैसे सम्बोधन हैं। ये सभी शब्द अंग्रेजी भाषा के 'नेटिव', 'एबोरिजिनल' और ट्राइब शब्दों के पर्याय हैं।

ब्रिटिश काल से पूर्व भारत के विपुल वन साम्राज्य के अधिष्ठाता 'वनवासी' या 'आदिवासी' हुआ करते थे, जिनकी स्वतंत्र सत्ता थी जो ब्रिटिश साम्राज्य में घटते हुए शनैः-शनैः अधोगति को प्राप्त कर चुकी थी। इन सभी स्तरों का अध्ययन अनेक मानवशास्त्रियों, इतिहासकारों, समाजशास्त्रियों एवं अर्थशास्त्रियों द्वारा किया जा चुका है। विशेषकर ब्रिटिश काल में ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्मान्तरण की प्रक्रिया को तीव्र गति देने के लिए आदिवासियों की जीवनचर्या को जानने का प्रयास प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार पादरियों द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन को आदिवासियों के विषय में प्रारम्भिक अध्ययन माना जा सकता है। तत्पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य को सुचारु रूप से चलाने एवं प्रशासनिक एकता स्थापित करने की दृष्टि से, शासकीय आधार पर आदिवासियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की गयी। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य के प्रवेश काल से ही वनवासियों में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया था।

भारत के आदिवासियों का व्यवस्थित अध्ययन वर्ष 1891 से उस समय प्रारम्भ हुआ, जब एच.एच. रिजले की "द ट्राइब्स एण्ड कास्ट ऑफ बंगाल" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। तत्कालीन जनगणना आयुक्त सर रिजले ने अपनी पुस्तक "पीपुल्स ऑफ इण्डिया" (1901) में आदिवासियों के पहचान एवं रहन-सहन पर प्रकाश डाला। डब्ल्यू क्रुक्स

तो आदिवासियों से इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने कई खण्डों में इनका वर्णन किया है।² वैरियर एल्विन³ एवं रूसल⁴ ने भी अपनी विभिन्न पुस्तकों एवं लेखों में आदिवासियों की जीवन विधियों एवं समस्याओं की चर्चा की है।

जे.एच. हट्टन ने भी जाति की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त की व्याख्या के सन्दर्भ में आदिवासियों की चर्चा की है।⁵ जी.एस. घुरिये, डी.एन. मजूमदार आदि मानव शास्त्रियों ने भी इनकी सामाजिक विशेषताओं एवं समस्याओं पर प्रकाश डालने का कार्य किया है।⁶

औपनिवेशिक युग में आदिवासियों की स्वायत्तता पर अंकुश लगाने का प्रयास किया गया, जिससे उन्हें अपने अस्तित्व समाप्त होने का आभास होने लगा और वे संगठित होकर उसका विरोध करने लगे। वनों पर शासकीय आधिपत्य, भूमि पर साहूकारों एवं जमींदारों का कब्जा आदि कुछ ऐसे कारक बने, परिणामस्वरूप वनवासी आन्दोलनमुख्य हुए। इस संक्रमण काल में आदिवासियों की गतिविधियों एवं उनमें हुए सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों पर अनेक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ, और वे इनके विश्लेषण के प्रति उन्मुख हुए। गोपाल भारद्वाज ने आदिवासियों के सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों की चर्चा की है। वहीं डा. जसवन्त नाग ने कोलों में राजनीतिक चेतना का गहन अध्ययन किया है।

जनजातीय लोग अपनी संस्कृति, परम्पराओं एवं प्राचीन प्रथाओं से जुड़े रहना चाहते हैं। जब उन्हें लगा कि बाहरी लोग उनकी संस्कृति, परम्पराओं एवं मान्यताओं को ध्वस्त करना चाहते हैं तो वे आन्दोलित हुए।⁷

यह विचारणीय नहीं है कि बाहरी लोगों की संस्कृति तथा स्थानीय जनजातियों की संस्कृति में भिन्नता थी। निश्चयता कहा जा सकता है कि बाहरी लोग सुदृढ़ एवं आधुनिक संस्कृति के पोषक थे। आदिवासियों की समस्याओं एवं जीवन विधियों के साथ आन्दोलन एवं विकास सम्बन्धी विषयों पर अनेक शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। उदाहरणार्थ – सच्चिदानन्द, एच.सी. प्रधान, एस.सी.राय, के.एन. सहाय, मार्टिन ओर्न्स, श्याम चौधरी, जे.पी.देसाई, बहादुर राम टण्डा, सुरेश कुमार सिन्हा, डा. ठाकोर लाल मीणा, डा. आर.के. सिन्हा, डा. बृहदेव शर्मा आदि विद्वानों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

उन्नीसवीं शताब्दी में हुए आदिवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिकता के परिवर्तनों पर दृष्टिपात करें, तो यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश उपनिवेश से लेकर आज तक इन आदिवासियों को विविध प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। आदिवासियों ने अपनी क्षमता के अनुसार इनका प्रतिवाद भी किया है। भारत में चुनौती एवं प्रत्युत्तर की अवधारणा, जिसे मूलतः प्रसिद्ध इतिहासकार ए.टायनबी ने विकसित किया, का उपयोग कुछ विद्वानों ने सम्यक रूप से किया। इन विद्वानों में वी.के.राय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।⁸ अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात से भारत की जनजातियों का शोषण अधिक हुआ है। अरुणाचल प्रदेश से लेकर भारत के अन्य क्षेत्रों में निवास करने वाले आदिवासियों के प्रयोग में आने वाली कृषि भूमि, वन क्षेत्र, चरागाहों आदि पर जमींदारों एवं अंग्रेजियत

फरमान लोगों द्वारा कब्जा अख्तियार कर लिया गया। इन कब्जों आदि की कार्यवाही से आदिवासी अधिक प्रभावित हुए।⁹

उपरोक्त कार्यवाही से आदिवासियों के सामने मुखबरी की स्थिति उत्पन्न हो गयी आदिवासियों को कृषि भूमि एवं वनीय क्षेत्र से बेदखल करने के बाद इनकी आर्थिक विपन्नता में वृद्धि हुई। महाजनों एवं साहूकारों के ऋणों से ये दबते चले गये। ऋण का सही समय पर भुगतान न कर पाने की स्थिति में ब्याज बढ़ता गया। अंग्रेजी हुकूमत द्वारा जो इन वनवासियों के विकास के लिए नियम एवं कानून बनाए गये थे, उन

कानूनों ने साहूकारों एवं महाजनों में पोषण की प्रवृत्ति को अधिक जाग्रत किया। अभिजात्य वर्ग द्वारा नियमों एवं कानूनों की अपने ढंग से व्याख्या परिष्कृत की गई। इस व्याख्या ने अंग्रेजों को भी दिग्भ्रमित कर दिया। फलतः कमजोर कृषकों एवं आदिवासियों का शोषण प्रारम्भ हुआ।

इंग्लैंड कौंसिल में यह स्वीकार किया कि हमारे द्वारा बनाए गए कानून, भारतीयों द्वारा घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। ये कानून किसी न किसी प्रकार से पूंजीपतियों एवं बड़े लोगों के संरक्षण का कार्य करने में अधिक सफल हुए हैं।¹⁰

इस प्रकार भारत में औपनिवेशिक राज्य की स्थापना से कमोवेश देश के सभी क्षेत्रों के आदिवासियों में असन्तोष पनपने लगा। उनकी भूमि पर ऋण के बदले कब्जा का सशक्त विरोध आदिवासी कृषकों ने किया यही नहीं, साथ ही साथ उन्होंने ऐसे कब्जा करने वाले व्यक्तियों का सामाजिक बहिष्कार भी किया। परिणामतः उन्हें भूमि से कब्जा हटाना पड़ा। आदिवासियों आर्थिक संरचना वर्तमान में कैसी है तथा उसकी कौन-कौन सी समस्याएँ हैं तथा इन्हें किस प्रकार से दूर किया जा सकता, ऐसे में अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों एवं नृत्वशास्त्रियों का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। इनकी आर्थिक संरचना एवं समस्याओं के निराकरण के लिए अनेक समाजशास्त्रियों एवं नृत्वशास्त्रियों ने अपनी अभिरुचि के अनुसार कारगर अध्ययनों को प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा आर्थिक विकास हेतु किसी विशिष्ट सिद्धान्त की प्रस्तुति नहीं की गयी है अर्थात् साधारण विकास कार्यक्रमों की रूपरेखा ही उपयुक्त मानी गयी है। इस धारणा का एक कारण यह भी है कि उनकी समस्याएँ लघु आकार की होने से सामान्यतः बड़े समूहों के लिए उपयुक्त नीति को ही समाधान योग्य मान लिया जाता है। परन्तु विकास की धारा या तो इन लघु समूहों से असम्बद्ध रही है अथवा उन पर कोई खास प्रभाव नहीं हुआ है।

जनजातियों के विकास हेतु ब्रिटिश शासकों ने एक सामान्य नीति का अनुसरण करते हुए विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया। लेकिन जनजातीय संस्कृति की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु कोई पहल नहीं की गयी।¹² आदिवासी क्षेत्रों में कानून व्यवस्था एवं शान्ति बनाए रखने का उत्तरदायित्व स्थानीय प्रशासन का होता था। स्वाभावतः आदिवासी शान्ति प्रिय होने के कारण स्थानीय प्रशासन इनके विकास की ओर निश्चित सा बना रहा।

जनजातीय क्षेत्रों एवं समुदायों की विकास प्रक्रिया के प्रवर्तन से नववाजित सम्पदा में स्थानीय आदिवासी समाज की साझेदारी के अभाव, कार्यक्रमों की शिथिलता, ऋणग्रस्तता, अशिक्षा एवं सांस्कृतिक लगाव के कारण सन्तुलित एवं सुदृढ़ विकास अभी भी संभव नहीं हो पा रहा है।

आदिवासी समाज

सामाजिकता एवं आर्थिकता की दृष्टि से आदिवासी प्रथम सोपान पर ही हैं, वहीं उन्नत समाज के लोग औद्योगिकता एवं नगरीयता के शिखर पर इस समय समाज के परिप्रेक्ष्य में यदि आदिवासियों का मूल्यांकन किया जाए तो ये आदिवासी इनकी अपेक्षा अधिक सरल एवं सौम्य स्वभाव के साथ ही साथ सीमित संसाधनों में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, इनकी आवश्यकताओं की समस्त पूर्ति प्रकृति प्रदत्त संसाधनों पर निर्भर है।¹¹ वन न केवल आदिवासियों के वांछित प्रिय निवास क्षेत्र रहे हैं बल्कि आजीविका के स्रोत भी रहे हैं।

वनो से प्राप्त होने वाला कन्दमूल फल इनका प्रिय भोजन रहा है। वनों से इन आदिवासियों की मात्र जीविका निर्वहन होता था। इनके द्वारा वन्य वस्तुओं के उपभोग से “परिस्थितिकी तन्त्र” को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती थी, बल्कि उसका संरक्षण होता था। आज भी वनों से इनका भावनात्मक सम्बन्ध है। वनों का कम होने के साथ ही साथ इन आदिवासियों का प्रकृति प्रेम कानूनी तौर पर छीन लिया गया है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। नित्य नवीन वृहद उद्योगों एवं तकनीकी उपकरणों की स्थापना के लिए बड़े भूखण्डों की आवश्यकता होती है। परिणामतः वन क्षेत्रों में लगातार संकुचन आता जा रहा है। पृथ्वी के धरातलीय एवं भू-गर्भिक संसाधनों के उत्खनन एवं क्षेत्र के अन्य वासियों के मध्य वन सम्पदा का प्रयोग बढ़ा है। जिसके फलस्वरूप आदिवासियों को अपनी जमीन एवं वन क्षेत्र से हाथ धोना पड़ा है। यह समस्या कृषक समुदाय के साथ-साथ जनजातियों की बनी है।

हमारी आधुनिक अर्थव्यवस्था में वन राजकीय सम्पदा है। यही वन सम्पदा राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत भी है। फलतः राज्य से वनों पर न केवल आदिवासियों के असीमित अधिकारों को समाप्त कर दिया है, बल्कि वनीय संसाधनों का व्यावसायिक दोहन भी प्रारम्भ कर दिया है। वनों के दोहन के लिए निगमों की स्थापना की गयी है।¹² यह निगम वनों को समग्र उत्पादन व्यवस्था में एक घटक के रूप में मानता है और उसका उपयोग लाभ-हानि के व्यावहारिक दृष्टिकोण से करता है। वर्तमान समय में राज्य सरकार का पूर्ण अधिकार स्थापित हो चुका है। जमींदारों एवं साहूकारों का प्रभुत्व बढ़ा है। परिणामस्वरूप बहुत से कृषक एवं आदिवासी समूह भूमिहीन होते जा रहे हैं। ऐसे भूमिहीन आदिवासियों एवं कृषकों के मध्य उत्पन्न हुए वर्गीय संघर्षों पर भी अनेक समाजशास्त्री विद्वानों ने प्रकाश डाला है। भारत की जनसंख्या का अधिकांश भाग जिनके पास कृषि योग्य भूमि नहीं है, वे ऐसे कृषक, जिनके पास कृषित भूमि है, के कृषित कार्यों पर आधारित हैं। इनकी अधिकतर समस्याएं कृषि सामाजिक संरचना की देन हैं। बलजीत सिंह एवं डेनियल थानिर जैसे अर्थशास्त्रियों ने इस पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। थानिर को तो कृषक समाज के अध्ययन का अद्भुत कहा जाता है।

वनों पर अपना आधिपत्य मानने वाले आदिवासियों को अचानक उनसे अलग कर दिया गया है। कम से कम सैद्धान्तिक रूप से। इससे भी आगे वन-प्रबन्धकों और आदिवासियों के बीच तनाव की स्थिति बनी हुई है। भाग्य चक्र कुछ इस प्रकार बदल गया है जिस वन सम्पदा के वे मालिक होते थे, उसी के दोहन के वे मजदूर बन गये हैं, और आधुनिक अर्थ तन्त्र से अनभिज्ञ होने के कारण उन्हें लाभ नहीं मिल पा रहा है।

आदिवासी कोल वनों से आज भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं, लेकिन वनों से उनके पुराने आत्मीय सम्बन्ध नहीं रहे। परम्परागत अधिकारों और रियायतों को वे लोग अपनी आय के आंशिक सम्पूरक के रूप में उपयोग करते हैं। प्रायः सभी समाज वैज्ञानिक एवं शोधार्थी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि भारतीय निर्धनता की समस्या 'समाज' के समान ही जटिल है। विशेषकर ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों की निर्धनता के अन्त के लिए सामाजिक एवं आर्थिक आधारों की पुनर्संरचना होनी चाहिए। इसके लिए भूमि सुधार की आवश्यकता है। लेकिन भूमि सुधार कार्यक्रम जो चलाए गये उससे भू-स्वामियों एवं भूमिहीनों के मध्य तनाव व संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई, ग्रामीणों में व्याप्त निर्धनता तथा असन्तोष ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन की उपज है।

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात वनों पर उनके द्वारा कब्जा किया जाने लगा, तत्पश्चात वहाँ की भूमि का वितरण भू-पतियों एवं साहूकारों में किये जाने से आदिवासी, जो पूर्व में वनों के स्वामी होते थे, भूमिहीन हो गये। इस प्रकार भूमिहीनों में निम्न जातियों एवं आदिवासियों की संख्या में वृद्धि के साथ ही साथ असन्तोष में भी वृद्धि हुई है। कुछ समाजशास्त्रियों ने असन्तोष की चर्चा की है, परन्तु भूमिहीनों में तुलनात्मक अभाव बोध से उत्पन्न संगठनों का अध्ययन सम्यक ढंग से बहुत कम किया गया है। इस क्षेत्र में जो कार्य हुए हैं, उसमें मुख्यतया कृषित मजदूरों, भूमिहीनों, दलित एवं कमजोर वर्ग के लोगों को विशेष रूप से सम्मिलित किया गया है। सुखवीर चौधरी, नरहरी कविराज, राकेश गुप्त के अध्ययनों में भूमिहीनों पर कार्य किया गया है। ग्रामीण समूहों में असन्तोष से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय अध्ययनों में आन्द्रेवेतई का सराहनीय योगदान है।

निर्धनों भूमिहीनों के अभाव का राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा ? इस पर भी शोध कार्य हुए हैं। इन अभावों में किस प्रकार संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई, उसके क्या परिणाम रहे, इस पर विद्वानों ने अपना ध्यान आकृष्ट किया है। इस क्षेत्र में मायरन वीनर, टी.के.ओमन, डी.एन. धनाग्रे को सम्मिलित किया जा सकता है। आदिवासियों द्वारा संघर्षात्मक भूमिका का विस्तृत विवरण टी.के. ओमन, डी.ए. धनाग्रे, एफ.एफ. डेल एवं पी.ए. मुखर्जी ने प्रस्तुत किया है।

आदिवासी कोलों का आर्थिक विकास

विकास शब्द का शाब्दिक अर्थ है – “वृद्धि-क्रमिक प्रगति का होना”¹³ पश्चिमी देशों में विकास को प्रधानतः एक आर्थिक प्रक्रिया माना जाता है, जिसका उद्देश्य जनसंख्या के सभी स्तरों के जीवन स्तर में सुधार करना होता है। इसे वस्तुओं के निरन्तर बढ़ते हुए उत्पादन के द्वारा जाना जाता है, परन्तु विकासशील देशों के लिए विकास सर्वाधिक विशिष्ट परिवर्तन प्रक्रियाओं का योग है। वे इसे एक बहुपक्षीय योग मानते हैं उनके लिए

“विकास सार रूप से चेतन, तर्क संगत एवं जानबूझकर प्रयत्न करने का मुद्दा है।” आर्थिक विकास की प्रक्रिया एक दैत्याकार पैमाने पर समाज का सकारात्मक कार्य है तथा इसका उद्देश्य रणनीतियों, धन और आर्थिक प्रगति से ही नहीं, अपितु सामाजिक दृष्टिकोण और संस्थाओं, मूल्य धारणाओं, स्वास्थ्य, सुरक्षा, आराम, राजनीति, शासन और विधि से होता है।¹⁴

इस प्रकार विकासशील समाजों के लिए “विकास” एक बहु आयामी अवधारणा है।¹⁵ जनजातीय समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को मानव इतिहास के अनवरत परिवर्तन और हमारी वर्तमान आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में गतिशील संरचना में समझा जा सकता है।¹⁶

विकास का सामान्य अर्थ बहुधा उच्चतर उपभोग और जीवन स्तर की सुदृढ़ गुणवत्ता माना जाता है। यह स्पष्ट है कि अधिक उपभोग को अपने आप में विकास का एक मात्र उद्देश्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है। फिर भी सामाजिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आधारभूत भौतिक आवश्यकताएं तो पूरी होनी ही चाहिए। इसलिए उस सीमा तक उपभोग मानवीय प्रयास का एक आधारभूत लक्ष्य बन जाता है। पर्याप्त पूर्ण संतुलित आहार, वस्त्र एवं प्राकृतिक आपदाओं से बचने एवं निद्रा हेतु आवास, मानव की मूलभूत आवश्यकता है। इसलिए उनकी व्याख्या होनी अनिवार्य है। हमारे देश में “पश्चिमी भील” अंचल जैसे कुछ आदिवासी क्षेत्रों में परिस्थिति का सन्तुलन इतना बिगड़ चुका है कि उनके परम्परागत परिवेश से इन न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं का पूरा होना भी अब संभव नहीं रहा है। कमोवेश यही स्थिति पाठा क्षेत्र के आदिवासी कोलों की है। उच्चतर व्यक्ति कौशल, स्थानीय अर्थ व्यवस्था के विविधीकरण से ही सन्तुलन की पुनर्स्थापना की जा सकती है।

ऊँचे उपभोग का लक्ष्य आदिवासी समाज पर एक मूल्य के रूप में आरोपित करते समय बड़े ही गम्भीर विचार की आवश्यकता है। नये मूल्यों का यह आरोपण सदैव जानबूझ कर ही नहीं होता है। आयोजकों की स्वयं अपनी, अपने समाज अथवा वर्ग के मूल्यों की प्राथमिकताएं अनायास उनकी विचारशीलता और उनके कार्यक्रमों में प्रतिबिम्बित हो सकती हैं। उदाहरणार्थ – आर्थिक विकास के साहित्य में आदिवासी समाज को बहुधा ‘गरीब’ कह दिया जाता है, जबकि गरीबी एक नितान्त भिन्न अवधारणा है और साधारणतया आदिवासी परिदृश्य से उसका कोई सम्बन्ध भी नहीं है। हाँ, कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जहाँ ऐसी विशिष्ट स्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं, कि शरीर धारण के लिए न्यूनतम आवश्यकताएं भी पूरी करना असम्भव हो रहा है। यहाँ असम्भव और विपन्नता है, गरीबी है।

वर्तमान में ऐसे बहुत से आदिवासी समूह अभी से दुर्गम वनीय क्षेत्रों में निवास करते हैं, वहाँ के नैसर्गिक संसाधन समृद्ध हैं तथा उनके जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं सीमित हैं। ऐसे समुदायों के मध्य जिनकी आवश्यकताएं अत्यन्त सीमित होती हैं, को उत्पादन बढ़ाने का सुझाव भी इन्हें पहली बार अटपटा और आश्चर्यचकित करने वाला होता है। आदिवासी समुदाय की ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं वैचारिक विशेषता इस प्रकार की रही है, कि उनके अस्तित्व एवं विकास के लिए हमारे संविधान निर्माता भी सजग रहे हैं। फलतः इन समुदायों के लोगों और उनके क्षेत्रों के विकास के लिए काफी लचीला प्रशासन प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है। वैधानिक एवं प्रशासनिक प्रक्रियाओं

को परिस्थितिजन्य संशोधित किया गया है। संविधान में मौलिक अधिकारों तथा समानता देने वाली अनेक धाराएं हैं। इनमें खण्ड 4 की धारा 46 में राज्य सरकारों को समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों पर विशेष ध्यान देने का निर्देश दिया गया है। विशेषकर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों पर ध्यान देने को कहा गया है जिससे उन्हें सामाजिक अन्याय एवं विविध प्रकार के शोषणों से बचाया जा सके। आदिवासी बहुल राज्यों में अलग से आदिम जनजाति कल्याण मंत्री की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। साथ ही आदिवासी कल्याण योजनाओं को चलाने के लिए विशेष केन्द्रीय अनुदान का भी प्रावधान किया गया है।

सन्दर्भ –

1. तिवारी, डा. शिवकुमार एवं शर्मा, डा. श्री कमल – म.प्र. की जनजातियाँ 1997, भोपाल, म.प्र. ग्रन्थ अकादमी, पू.सं.
2. क्रुक्स डब्ल्यू – “द ट्राइब्स एण्ड कास्ट ऑफ नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध” 1896।
3. वैरियर एलविन – “ए न्यू डील फार ट्राइबल इण्डिया (सम्पादित) 1963, भारत सरकार, मिनिस्ट्री ऑफ होम वेलफेयर।
4. रसल – “द ट्राइबल एण्ड कास्ट ऑफ दि सेन्ट्रल प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया, 1975।
5. हट्टन, जे.एच. – “कास्ट इन इण्डिया”, 1946।
6. घुरिये, जी.एस. – “जाति वर्ग एवं व्यवसाय”।
7. टण्डा, बहादुर राम – “अण्डमान निकोबार द्वीप समूह, 1994, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया।
8. राय, बी.के. – “चैलेन्जेज एवं रिस्पान्सेज इन ट्राइबल इण्डिया (1979), दिल्ली, मनोहर पब्लि. पू.सं. 109–122
9. वैरियर एलविन – “द फिलासफी ऑफ नेफा” पू.सं. 62
10. राघवेय्या वी – “ट्राइबल रिवोल्ट” (1971), नेल्लोर, आ.प्र. राष्ट्रीय आदिम जाति सेवक संघ, पू.सं. 261–66
11. तिवारी, डा. शिवकुमार एवं शर्मा डा. श्री कमल – म.प्र. की जनजातियाँ, (1997) भोपाल, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पू.सं. 200–202
12. तिवारी, डा. शिवकुमार, तिवारी डा. श्रीकमल – पूर्वोक्त पू.सं. 203
13. वोटामोर, सोसियोलोजी
14. कार्ल मार्क्स, “ए कन्स्टीट्यूशन टू दी क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकोनामी
15. Development means “A General unfolding of growth, evolution chambers twentieth century dictionary (1950), P.N. 252.
16. Dholcibia, R.P. – “Brochure of Colloquium on law as An Instrument of Development, VARANSI, BHU (1977). P.N.2



EARN YOUR

MBA

WWW.IIMPS.IN



Accreditation & Ranking



UGC / NCTE Approved.

INFO@IIMPS.IN

☎ 011-41005174

RESEARCH
GATEWAY

STOP PLAGIARISM



Arogyam Ayurveda
Holistic Healing through herbs



AROGYAM
ONLINE

PARIVARTAN PSYCHOLOGY CENTER

परिवर्तन

COLOR PSYCHOLOGY : HOW COLOR AFFECT YOUR CHILD



BLUE

Calms your Child's
Mind & Body

YELLOW

Promotes Concentration,
Stimulates the Memory

PINK

Evokes Empathy,
makes your Child Calm

RED

Excites and energizes
your Child's body

GREEN

Improves Reading speed
and Comprehension

www.parivartan4u.com



परिवर्तन

Confuse about your children's future?

भारतीय भाषा, शिक्षा, साहित्य एवं शोध

ISSN 2321 – 9726

WWW.BHARTIYASHODH.COM



**INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF
MANAGEMENT SCIENCE & TECHNOLOGY**

ISSN – 2250 – 1959 (O) 2348 – 9367 (P)

WWW.IRJMSST.COM



**INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF
COMMERCE, ARTS AND SCIENCE**

ISSN 2319 – 9202

WWW.CASIRJ.COM



**INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF
MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES**

ISSN 2277 – 9809 (O) 2348 - 9359 (P)

WWW.IRJMSH.COM



**INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF SCIENCE
ENGINEERING AND TECHNOLOGY**

ISSN 2454-3195 (online)

WWW.RJSET.COM



**INTEGRATED RESEARCH JOURNAL OF
MANAGEMENT, SCIENCE AND INNOVATION**

ISSN 2582-5445

WWW.IRJMSI.COM



**JOURNAL OF LEGAL STUDIES, POLITICS
AND ECONOMICS RESEARCH**

WWW.JLPER.COM

JLPE